पं० चंद्रधर शर्मा, गुलेरी

श्री गुलेरी जी का जन्म विक्रमी संवत् १९४० में और स्वर्गवास विक्रमी संवत् १९७८ में हुआ। आप संस्कृत के प्रकांड पंडित थे। आपने कहानियाँ गिनती की तीन लिखीं।

फिर भी 'उसने कहा था'—आपकी एक उत्कृष्ट कहानी है। यह संवत् १९७२ की 'सरस्वती' में छपी थी। इस कहानी का सब से सुन्दर अंश उसका अन्तिम दृश्य है। मृत्यु के समय जीवन की विभिन्न घटनाएँ जिस रूप में नेत्र-पटल के सामने आ जाती हैं उसका चित्र बहुत ही सुन्दर और मनो-वैज्ञानिक ढङ्ग से अंकित किया गया है। अनेक दृष्टियों से इस कहानी की उत्कृष्टता के कारण ही गुलेरी जी की ख्याति कथाकार के रूप में हो गई है। साथ ही हिन्दी कथा के इतिहास में भी इस कथा ने अपना एक स्थान बना लिया है।

उसने कहा था

बड़े-बड़े शहरों के इक्के-गाड़ीवालों की ज़बान के कोड़ों से जिनकी पीठ छिल गई है और कान पक गए हैं उनसे हमारी प्रार्थना है कि अमृतसर के बंबूकार्टवालों की बोली का मरहम लगावें। जब बड़े-बड़े शहरों की चौड़ी सड़कों पर घोड़े की पीठ को चाबुक से धुनते हुए इक्केवाले कभी घोड़े की नानी से अपना निकट संबंध स्थिर करते हैं, कभी राह चलते पैदलों की आँखों के न होने पर तरस खाते हैं, कभी उनके पैरों की अँगुलियों के पैरों को चींथकर अपने ही को सताया हुआ बताते हैं और संसार भर की ग्लानि, निराशा और क्षोभ के अवतार बने नाक की सीध चले जाते हैं, तब अमृतसर में उनकी बिरादरीवाले तंग चक्करदार गलियों में, हर एक लड्ढीवाले के लिये ठहरकर, सब्र का समुद्र उमड़ाकर, 'बचो खालसा जी', 'हटो भाई जी', 'ठहरना भाई', 'आने दो लाला जी', 'हटो बाछा', कहते

हुए सफ़ेद फेटों, खच्चरों और बतकों, गन्ने और खोमचे और भारेवालों के जंगल में से राह खेते हैं। क्या मजाल है कि जी और साहब बिना सुने किसी को हटना पड़े। यह बात नहीं कि उनकी जीभ चलती ही नहीं, चलती है, पर मीठी छुरी की तरह महीन मार है। यदि कोई बुढ़िया बार-बार चितौने देने पर भी लीक से नहीं हटती तो उनकी वचनावली के ये नमूने हैं—हट जा, जीणे जोगिए; हट जा, करमा वालिए; हट जा, पुत्तां प्यारिए; बच जा, लंबी वालिए। समष्टि में इसका अर्थ है कि तू जीने योग्य है, तू भाग्योंवाली है, पुत्रों को प्यारी है, लंबी उमर तेरे सामने है, तू क्यों मेरे पहियों के नीचे आना चाहती है? बच जा।

ऐसे बंबूकार्टवालों के बीच में होकर एक लड़का और लड़की चौक की एक दूकान पर आ मिले। उसके बालों और इसके ढीले सुथने से जान पड़ता था कि दोनों सिख हैं। वह अपने मामा के केश धोने के लिये दही लेने आया था और यह रसोई के लिये बड़ियाँ! दूकानदार एक परदेशी से गुथ रहा था, जो सेर-भर गीले पापड़ों की गड्डी को गिने बिना हटता न था।

"तेरे घर कहाँ है?"

"मगरे में,—और तेरे?"

"माँझे में;—यहाँ कहाँ रहती है?"

"अतरसिंह की बैठक में, वे मेरे मामा होते हैं।"

"मैं भी मामा के यहाँ आया हूँ, उनका घर गुरुबाज़ार में है।"

इतने में दूकानदार निपटा और इनका सौदा देने लगा। सौदा लेकर दोनों साथ-साथ चले। कुछ दूर जाकर लड़के ने मुस्कुराकर पूछा—'

"तेरी कुड़माई (=सगाई) हो गई?" इस पर लड़की कुछ आँखें चढ़ाकर 'धत' कहकर दौड़ गई और लड़का मुँह देखता रह गया।

दूसरे-तीसरे दिन सब्जीवाले के यहाँ, या दूधवाले के यहाँ, अकस्मात् दोनों मिल जाते। महीना भर यही हाल रहा। दो-तीन बार लड़के ने फिर पूछा—"तेरी कुड़माई हो गई?" और उत्तर में वही 'धत्' मिला। एक दिन

जब फिर लड़के ने वैसे ही हँसी में चिढ़ाने के लिये पूछा, तब लड़की, लड़के की संभावना के विरुद्ध, बोली—"हाँ, हो गई।"

"कब ?"

"कल;—देखते नहीं यह रेशम से कढ़ा हुआ सालू ।" लड़की भाग गई। लड़के ने घर की राह ली। रास्ते में एक लड़के को मोरी में ढकेल दिया, एक छाबड़ीवाले (=खोमचेवाले) की दिन-भर की कमाई खोई, एक कुत्ते पर पत्थर मारा और गोभीवाले के ठेले में दूध उड़ेल दिया। सामने नहा कर आती हुई किसी वैष्णवी से टकरा कर अंधे की उपाधि पाई। तब कहीं घर पर पहुँचा।

२

"राम-राम, यह भी कोई लड़ाई है। दिन-रात खंदकों में बैठे हड्डियाँ अकड़ गईं। लुधियाने से दसगुना जाड़ा, और मेंह और बरफ ऊपर से। पिंडलियों तक कीचड़ में धँसे हुए हैं। गनीम कहीं दिखाता नहीं;—घंटे दो घंटे में कान के परदे फाड़नेवाले धमाके के साथ सारी खंदक हिला जाती है और सौ-सौ गज धरती उछल पड़ती है। इस गैबी गोले से बचे तो कोई लड़े। नगरकोट का ज़लज़ला सुना था, यहाँ दिन में पचीस ज़लज़ले होते हैं। जो कहीं खंदक से बाहर साफ़ा या कुहनी निकल गई तो चटाक से गोली लगती है। न मालूम बेईमान मिट्टी में लपेटे हुए हैं या घास की पत्तियों में छिपे रहते हैं।"

"लहना सिंह, और तीन दिन हैं। चार तो खंदक में बिता ही दिये। परसों 'रिलीफ़' आ जायेगी और फिर सात दिन की छुट्टी। अपने हाथों झटका करेंगे और पेट भर खाकर सो रहेंगे। उसी फरंगी मेम के बाग़ में—मख़मल की सी हरी घास है। फल और दूध की वर्षा कर देती है। लाख कहते हैं, दाम नहीं लेती है। कहती है, तुम राजा हो, मेरे मुल्क को बचाने आए हो।"

"चार दिन तक पलक नहीं झँपी। बिना फेरे घोड़ा बिगड़ता है और बिना लड़े सिपाही। मुझे तो संगीन चढ़ा कर मार्च का हुक्म मिल जाय, फिर

सात जर्मनों को अकेला मार कर न लौटूँ तो मुझे दरबार साहब की देहली पर माथा टेकना नसीब न हो। पाजी कहीं के, कलों के घोड़े—संगीन देखते ही मुँह फाड़ देते हैं और पैर पकड़ने लगते हैं। यों अँधेरे में तीन-तीन मन का गोला फेंकते हैं। उस दिन धावा किया था—चार मील तक एक जर्मन नहीं छोड़ा था। पीछे जनरल साहब ने हट आने का कमान दिया, नहीं तो—"

"नहीं तो सीधे बर्लिन पहुँच जाते। क्यों ?" सूबेदार हजारा सिंह ने मुस्करा कर कहा—"लड़ाई के मामले जमादार या नायक के चलाये नहीं चलते। बड़े अफसर दूर की सोचते हैं। तीन सौ मील का सामना है। एक तरफ बढ़ गये तो क्या होगा ?"

"सूबेदार जी, सच है," लहना सिंह बोला—"पर करें क्या ? हड्डियों में जो जाड़ा धँस गया है। सूर्य निकलता नहीं और खाई में दोनों तरफ़ से चम्बे की बावलियों के-से सोते झर रहे हैं। एक धावा हो जाय तो गरमी आ जाय।"

"उदमी, उठ, सिगड़ी में कोले डाल। वजीरा, तुम चार जने बाल्टियाँ लेकर खाई का पानी बाहर फेंको। महासिंह, शाम हो गई है, खाई के दरवाज़े का पहरा बदला दें।" यह कहते हुए सूबेदार सारी खंदक में चक्कर लगाने लगे।

वजीरासिंह पलटन का विदूषक था। बाल्टी में गँदला पानी भर कर खाई के बाहर फेंकता हुआ बोला—"मैं पाधा (=पुरोहित) बन गया हूँ। करो जर्मनी के बादशाह का तर्पण !" इस पर सब खिलखिला पड़े और उदासी के बादल फट गये।

लहना सिंह ने दूसरी बाल्टी भरकर उसके हाथ में देकर कहा—"अपनी बाड़ी के खरबूजों में पानी दो। ऐसा खाद का पानी पंजाब भर में नहीं मिलेगा।

"हाँ, देश क्या है, स्वर्ग है। मैं तो लड़ाई के बाद सरकार से दस गुना जमीन यहाँ माँग लूँगा और फलों के बूटे लगाऊँगा।"

"लाड़ी होरां (=स्त्री) को भी यहां बुला लोगे ? या वही दूध पिलानेवाली फरंगी मेम—"

"चुप कर। यहां वालों को शरम नहीं।"

"देस-देस की चाल है। आज तक मैं उसे समझा न सका कि सिख तमाकू नहीं पीते। वह सिगरेट देने में हठ करती है, ओठों में लगाना चाहती है, और मैं पीछे हटता हूँ तो समझती है कि राजा बुरा मान गया, अब मेरे मुल्क के लिये लड़ेगा नहीं।"

"अच्छा, अब बोधसिंह कैसा है ?"

"अच्छा है।"

"जैसे मैं जानता ही न होऊँ। रात-भर तुम अपने दोनों कंबल उसे उढ़ाते हो और आप सिगड़ी के सहारे गुज़र करते हो। उसके पहरे पर आप पहरा दे आते हो। अपने सूखे लकड़ी के तख्तों पर उसे सुलाते हो, आप कीचड़ में पड़े रहते हो। कहीं तुम न माँदे पड़ जाना। जाड़ा क्या है मौत है और 'निमोनिया' से मरनेवालों को मुरब्बे नहीं मिला करते।"

"मेरा डर मत करो। मैं तो बुलेल की खड्ड के किनारे मरूँगा। भाई कीरतसिंह की गोदी पर मेरा सिर होगा और मेरे हाथ के लगाये हुए आँगन के आम के पेड़ की छाया होगी।"

वजीरासिंह ने त्यौरी चढ़ाकर कहा—"क्या मरने-मराने की बात लगाई है ! मरे जर्मनी और तुरक ! हाँ भाइयो, कुछ गाओ।"

× × ×

कौन जानता था कि दाढ़ियोंवाले, घरबारी सिख गंदे गीत गायेंगे, पर सारी खंदक गीत से गूँज उठी और सिपाही फिर ताज़े हो गए, मानों चार दिन से सोते और मौज ही करते रहे हों।

३

दो पहर रात गई है। अँधेरा है। सन्नाटा छाया हुआ है। बोधसिंह खाली बिसकुटों के तीन टिनों पर अपने दोनों कंबल बिछाकर और लहनासिंह के दो कंबल और एक बरानकोट ओढ़कर सो रहा है। लहनासिंह पहरे

पर खड़ा हुआ है। एक आँख खाई के मुँह पर है और एक बोधसिंह के दुबले शरीर पर। बोधसिंह कराहा।

"क्यों बोधा भाई, क्या है?"

"पानी पिला दो।"

लहनासिंह ने कटोरा उसके मुँह से लगाकर पूछा—"कहो कैसे हो?" पानी पीकर बोधा बोला—"कपनी छूट रही है। रोम-रोम में तार दौड़ रहे हैं। दाँत बज रहे हैं।"

"अच्छा, मेरी जरसी पहन लो।"

"और तुम!"

"मेरे पास सिगड़ी है और मुझे गर्मी लगती है; पसीना आ रहा है।"

"ना, मैं नहीं पहनता; चार दिन से तुम मेरे लिये—"

"हाँ, याद आई। मेरे पास दूसरी गरम जरसी है। आज सबेरे ही आई है। विलायत से मेमें बुन-बुनकर भेज रही हैं। गुरू उनका भला करें।" यों कहकर लहना कोट उतारकर जरसी उतारने लगा।

"सच कहते हो!"

"और नहीं झूँठ?" यों कहकर नाहीं करते बोधा को उसने ज़बरदस्ती जरसी पहना दी और आप खाकी कोट और जीन का कुरता भर पहनकर पहरे पर आ खड़ा हुआ। मेम की जरसी की कथा केवल कथा थी।

आधा घंटा बीता। इतने में खाई के मुँह से आवाज़ आई—"सूबेदार हजारासिंह!"

"कौन? लपटन साहब? हुकुम हुज़ूर!" कहकर सूबेदार तन कर फ़ौजी सलाम करके सामने हुआ।

"देखो, इसी दम धावा करना होगा। मील-भर की दूरी पर पूरब के कोने में एक जर्मन खाई है। उसमें पचास से ज़ियादह जर्मन नहीं हैं। इन पेड़ों के नीचे-नीचे दो खेत काटकर रास्ता है। तीन-चार घुमाव हैं। जहाँ मोड़ है वहाँ पंद्रह जवान खड़े कर आया हूँ। तुम यहाँ दस आदमी छोड़

कर सबको साथ ले उनसे जा मिलो। खंदक छीनकर वहीं जब तक दूसरा हुक्म न मिले, डटे रहो। हम यहाँ रहेगा।"

"जो हुक्म।"

चुपचाप सब तैयार हो गए। बोधा भी कंबल उतारकर चलने लगा। तब लहनासिंह ने उसे रोका। लहनासिंह आगे हुआ तो बोधा के बाप सूबेदार ने उँगली से बोधा की ओर इशारा किया। लहनासिंह समझकर चुप हो गया। पीछे दस आदमी कौन रहें, इस पर बड़ी हुज्जत हुई। कोई रहना न चाहता था। समझा-बुझाकर सूबेदार ने मार्च किया। लपटन साहब लहना की सिगड़ी के पास मुँह फेरकर खड़े हो गए और जेब से सिगरेट निकाल कर सुलगाने लगे। दस मिनट बाद उन्होंने लहना की ओर हाथ बढ़ाकर कहा—

"लो, तुम भी पियो।"

आँख मारते-मारते लहनासिंह सब समझ गया। मुँह का भाव छिपा-कर बोला—"लाओ, साहब!" हाथ आगे करते ही उसने सिगड़ी के उजाले में साहब का मुँह देखा। बाल देखे। तब उसका माथा ठनका। लपटन साहब के पट्टियोंवाले बाल एक दिन में कहाँ उड़ गए और उनकी जगह क़ैदियों के से कटे हुए बाल कहाँ से आ गए?

शायद साहब शराब पिये हुए हैं और उन्हें बाल कटवाने का मौक़ा मिल गया है? लहनासिंह ने जाँचना चाहा। लपटन साहब पाँच वर्ष से उसकी रेजिमेंट में थे।

"क्यों साहब, हम लोग हिन्दुस्तान कब जायँगे?"

"लड़ाई ख़त्म होने पर। क्यों, क्या यह देश पसन्द नहीं?"

"नहीं साहब, शिकार के वे मज़े यहाँ कहाँ? याद है, पारसाल नकली लड़ाई के पीछे हम आप जगाधरी के ज़िले में शिकार करने गए थे?"—"हाँ हाँ—वही जब आप खोते पर सवार थे और आपका खानसामा अब्दुल्ला रास्ते के एक मंदिर में जल चढ़ाने को रह गया था?" "बेशक, पाजी कहीं का।"—"सामने से वह नीलगाय निकली कि ऐसी बड़ी मैंने कभी न

देखी थी। और आपकी एक गोली कंधे में लगी और पुट्ठे में निकली। ऐसे अफ़सर के साथ शिकार खेलने में मज़ा है। क्यों साहब, शिमले से तैयार होकर उस नीलगाय का सिर आ गया था न? आपने कहा था कि रेजिमेंट की मैस में लगावेंगे।" "हो, पर मैंने वह विलायत भेज दिया"—"ऐसे बड़े-बड़े सींग! दो दो फुट के तो होंगे!"

"हाँ, लहनासिंह, दो फुट चार इंच के थे। तुमने सिगरेट नहीं पिया?"

"पीता हूँ साहब, दियासलाई ले आता हूँ,"—कहकर लहनासिंह खंदक में घुसा। अब उसे संदेह नहीं रहा था। उसने झटपट निश्चय कर लिया कि क्या करना चाहिये।

अँधेरे में किसी सोनेवाले से वह टकराया।

"कौन? वजीरासिंह?"

"हाँ, क्यों लहना? क्या क़यामत आ गई? ज़रा तो आँख लगने दी होती?"

४

"होश में आओ। क़यामत आई है और लपटन साहब की वर्दी पहनकर आई है।"

"क्या?"

"लपटन साहब या तो मारे गए है या क़ैद हो गए हैं! उनकी वर्दी पहनकर यह कोई जर्मन आया है! सूबेदार ने इसका मुँह नहीं देखा। मैंने देखा है और बातें की हैं। सौहरा (=ससुरा) साफ़ उर्दू बोलता है; पर किताबी उर्दू। और मुझे पीने को सिगरेट दिया है।"

"तो अब?"

"अब मारे गए। धोखा है। सूबेदार कीचड़ में चक्कर काटते फिरेंगे और यहाँ खाई पर धावा होगा। उधर उन पर खुले में धावा होगा। उठो, एक काम करो। पलटन के पैरों के निशान देखते-देखते दौड़ जाओ। अभी बहुत दूर न गए होंगे। सूबेदार से कहो कि एकदम लौट आवें। खंदक की

बात झूठ है। चले जाओ, खंदक के पीछे से निकल जाओ। पत्ता तक न खुड़के। देर मत करो।"

"हुकुम तो यही है कि यहीं—"

"ऐसी तैसी हुकुम की! मेरा हुकुम—जमादार लहनासिंह जो इस वक्त यहाँ सबसे बड़ा अफ़सर है उसका हुकुम है। मैं लपटन साहब की ख़बर लेता हूँ।"

"पर यहाँ तो तुम आठ ही हो।"

"आठ नहीं, दस लाख। एक-एक अकालिया सिख सवा लाख के बराबर होता है। चले जाओ।"

लौटकर खाई के मुहाने पर लहनासिंह दीवार से चिपक गया। उसने देखा कि लपटन साहब ने जेब से बेल के बराबर तीन गोले निकाले। तीनों को जगह-जगह खंदक की दीवारों में घुसेड़ दिया और तीनों में एक तार-सा बाँध दिया। तार के आगे सूत की गुत्थी थी, जिसे सिगड़ी के पास रक्खा। बाहर की तरफ़ जाकर एक दियासलाई जलाकर गुत्थी पर रखने—

बिजली की तरह दोनों हाथों से उलटी बंदूक़ को उठाकर लहनासिंह ने साहब की कुहनी पर तानकर दे मारा। धमाके के साथ साहब के हाथ से दियासलाई गिर पड़ी। लहनासिंह ने एक कुंदा साहब की गर्दन पर मारा और साहब "आह! माई गाड!" कहते हुए चित्त हो गए! लहनासिंह ने तीनों गोले बीनकर खंदक के बाहर फेंके और साहब को घसीटकर सिगड़ी के पास लिटाया। जेबों की तलाशी ली। तीन-चार लिफ़ाफ़े और एक डायरी निकालकर उन्हें अपनी जेब के हवाले किया।

साहब की मूर्च्छा हटी। लहनासिंह हँसकर बोला—"क्यों लपटन साहब? मिज़ाज कैसा है? आज मैंने बहुत बातें सीखीं। यह सीखा कि सिख सिगरेट पीते हैं। यह सीखा कि जगाधरी के ज़िले में नील गायें होती हैं और उनके दो फुट चार इंच के सींग होते हैं। यह सीखा कि मुसलमान खानसामा मूर्त्तियों पर जल चढ़ाते हैं और लपटन साहब खोते पर चढ़ते हैं। पर यह

तो कहो, ऐसी साफ़ उर्दू कहाँ से सीख आए ? हमारे लपटन साहब तो बिना 'डैम' के पांच लफ़्ज़ भी नहीं बोला करते थे।"

लहना ने पतलून की जेबों की तलाशी नहीं ली थी। साहब ने, मानों जाड़े से बचाने के लिये, दोनों हाथ जेबों में डाले।

लहनासिंह कहता गया—"चालाक तो बड़े हो, पर माझे का लहना इतने बरस लपटन साहब के साथ रहा है। उसे चकमा देने के लिये चार आँखें चाहियें। तीन महीने हुए, एक तुरकी मौलवी मेरे गाँव में आया था। औरतों को बच्चे होने के तावीज बाँटता था और बच्चों को दवाई देता था। चौधरी के बड़ के नीचे मंजा बिछाकर हुक्का पीता रहता था और कहता था कि जर्मनीवाले बड़े पंडित हैं। वेद पढ़-पढ़कर उसमें से विमान चलाने की विद्या जान गए हैं। गौ को नहीं मारते। हिन्दुस्तान में आ जायँगे तो गोहत्या बन्द कर देंगे। मण्डी के बनियों को बहकाया था कि डाकख़ाने से रुपये निकाल लो, सरकार का राज्य जानेवाला है। डाक-बाबू पोल्हूराम भी डर गया था। मैंने मुल्ला जी की दाढ़ी मूँड़ दी थी और गाँव के बाहर निकालकर कहा था कि जो मेरे गाँव में अब पैर रखा तो—"

साहब की जेब में से पिस्तौल चला और लहना की जाँघ में गोली लगी। इधर लहना की हैनरी मार्टिनी के दो फायरों ने साहब की कपालक्रिया कर दी। धड़ाका सुनकर सब दौड़ आए।

बोधा चिल्लाया—"क्या है ?"

लहनासिंह ने उसे तो यह कहकर सुला दिया कि "एक हड़का हुआ कुत्ता आया था, मार दिया।" और औरों से सब हाल कह दिया। बंदूकें लेकर सब तैयार हो गए। लहना ने साफ़ा फाड़कर घाव के दोनों तरफ़ पट्टियाँ कसकर बाँधीं। घाव मांस में ही था। पट्टियों के कसने से लहू निकलना बंद हो गया।

इतने में सत्तर जर्मन चिल्लाकर खाई में घुस पड़े। सिखों की बंदूकों की बाढ़ ने पहले धावे को रोका। दूसरे को रोका, पर यहाँ थे आठ (लहनासिंह

तक-तककर मार रहा था—वह खड़ा था, और, और लेटे हुए थे) और वे सत्तर । अपने मुर्दा भाइयों के शरीर पर चढ़कर जर्मन आगे घुसे आते थे । थोड़े से मिनटों में वे—

अचानक आवाज़ आई—"वाह गुरुजी की फ़तह ! वाह गुरुजी का खालसा !" और धड़ाधड़ बंदूकों के फ़ायर जर्मनी की पीठ पर पड़ने लगे । ऐन मौक़े पर जर्मन दो चक्की के पाटों के बीच आ गए । पीछे से सूबेदार हजारासिंह के जवान आग बरसाते थे और सामने लहनासिंह के साथियों के संगीन चल रहे थे । पास आने पर पीछेवालों ने भी संगीन पिरोना शुरू कर दिया ।

एक किलकारी और—"अकाल सिक्खा दी फौज आई ! वाह गुरुजी दी फ़तह ! वाह गुरुजी दा खालसा !! सत श्री-अकाल पुरुष !!!" और लड़ाई ख़तम हो गई । तिरसठ जर्मन या तो खेत रहे थे, या कराह रहे थे ! सिक्खों में पन्द्रह के प्राण गए । सूबेदार के दाहने कंधे में से गोली आर-पार निकल गई । लहनासिंह की पसली में एक गोली लगी । उसने घाव को ख़ंदक की गीली मिट्टी से पूर लिया और बाक़ी का साफ़ा कसकर कमरबंद की तरह लपेट लिया । किसी को ख़बर न हुई कि लहना के दूसरा घाव—भारी घाव—लगा है ।

लड़ाई के समय चाँद निकल आया था । ऐसा चाँद, जिसके प्रकाश से संस्कृत-कवियों का दिया हुआ 'क्षयी' नाम सार्थक होता है । और हवा ऐसी चल रही थी जैसी कि बाणभट्ट की भाषा में 'दंतवीणोपदेशाचार्य' कहलाती । वज़ीरासिंह कह रहा था कि कैसे मन-मन भर फ्रांस की भूमि मेरे बूटों से चिपक रही थी जब मैं दौड़ा-दौड़ा सूबेदार के पीछे गया था । सूबेदार लहनासिंह से सारा हाल सुन और काग़ज़ात पाकर, वे उसकी तुरत-बुद्धि को सराह रहे थे और कह रहे थे कि तू न होता तो आज सब मारे जाते ।

इस लड़ाई की आवाज़ तीन मील दाहिनी ओर की खाईवालों ने सुन ली थी । उन्होंने पीछे टेलीफ़ोन कर दिया था । वहाँ से झटपट दो डाक्टर और दो बीमार ढोने की गाड़ियाँ चलीं, जो कोई डेढ़ घंटे के अंदर-अंदर

आ पहुँची। फ़ील्ड-अस्पताल नज़दीक था। सुबह होते होते वहाँ पहुँच जायँगे, इसलिये मामूली पट्टी बाँधकर एक गाड़ी में घायल लिटाये गए और दूसरी में लाशें रखी गईं। सूबेदार ने लहनासिंह की जाँघ में पट्टी बँधवानी चाही। पर उसने यह कहकर टाल दिया कि थोड़ा घाव है, सबेरे देखा जायगा। बोधसिंह ज्वर में बर्रा रहा था। वह गाड़ी में लिटाया गया। लहना को छोड़कर सूबेदार जाते नहीं थे। यह देख लहना ने कहा—"तुम्हें बोधा की क़सम है और सूबेदार जी की सौगंद है जो इस गाड़ी में न चले जाओ।"

"और तुम?"

"मेरे लिये वहाँ पहुँचकर गाड़ी भेज देना। और जर्मन मुरदों के लिये भी तो गाड़ियाँ आती होंगी। मेरा हाल बुरा नहीं है। देखते नहीं, मैं खड़ा हूँ? वज़ीरासिंह मेरे पास है ही।"

"अच्छा, पर—"

बोधा गाड़ी पर लेट गया? भला। आप भी चढ़ जाओ। सुनिए तो, सूबेदारनी होरां को चिट्ठी लिखो तो मेरा मत्था टेकना लिख देना। और जब घर जाओ तो कह देना कि मुझसे जो उन्होंने कहा था वह मैंने कर दिया।"

गाड़ियाँ चल पड़ी थीं। सूबेदार ने चढ़ते-चढ़ते लहना का हाथ पकड़कर कहा—"तूने मेरे और बोधा के प्राण बचाए हैं। लिखना कैसा! साथ ही घर चलेंगे। अपनी सूबेदारनी को तू ही कह देना। उसने क्या कहा था?"

"अब आप गाड़ी पर चढ़ जाओ। मैंने जो कहा, वह लिख देना और कह भी देना।"

गाड़ी के जाते ही लहना लेट गया। "वज़ीरा, पानी पिला दे और मेरा कमरबन्द खोल दे। तर हो रहा है।"

५

मृत्यु के कुछ समय पहले स्मृति बहुत साफ़ हो जाती है। जन्म भर

की घटनाएँ एक-एक करके सामने आती हैं। सारे दृश्यों के रंग साफ़ होते हैं; समय की धुन्ध बिलकुल उन से हट जाती है।

× × ×

लहनासिंह बारह वर्ष का है। अमृतसर में मामा के यहाँ आया हुआ है। दहीवाले के यहाँ, सब्ज़ीवाले के यहाँ, हर कहीं, उसे एक आठ वर्ष की लड़की मिल जाती है। जब वह पूछता है कि तेरी कुड़माई हो गई, तब 'धत्' कहकर वह भाग जाती है। एक दिन उसने वैसे ही पूछा तो उसने कहा—"हाँ, कल हो गई, देखते नहीं यह रेशम के फूलोंवाला सालू?" सुनते ही लहनासिंह को दुःख हुआ। क्रोध हुआ। क्यों हुआ?

"वज़ीरासिंह, पानी पिला दे।"

पचीस वर्ष बीत गए। अब लहनासिंह नं० ७७ राइफ़ल्स में जमादार हो गया है। उस आठ वर्ष की कन्या का ध्यान ही न रहा। न मालूम वह कभी मिली थी, या नहीं। सात दिन की छुट्टी लेकर ज़मीन के मुक़द्दमे की पैरवी करने वह अपने घर गया। वहाँ रेजीमेंट के अफ़सर की चिट्ठी मिली कि फ़ौज लाम पर जाती है। फ़ौरन चले आओ। साथ ही सूबेदार हज़ारासिंह की चिट्ठी मिली कि मैं और बोधसिंह भी लाम पर जाते हैं। लौटते हुए हमारे घर होते जाना। साथ चलेंगे।

सूबेदार का गाँव रास्ते में पड़ता था और सूबेदार उसे बहुत चाहता था। लहनासिंह सूबेदार के यहाँ पहुँचा।

जब चलने लगे, तब सूबेदार बेड़े में से निकलकर आया। बोला—"लहना, सूबेदारनी तुमको जानती हैं। बुलाती हैं। जा, मिल आ।" लहनासिंह भीतर पहुँचा। सूबेदारनी मुझे जानती हैं; कब से? रेज़ीमेंट के क्वार्टरों में तो कभी सूबेदार के घर के लोग रहे नहीं। दरवाज़े पर जाकर 'माथा टेकना' कहा। असीस सुनी। लहनासिंह चुप।

"मुझे पहचाना?"

"नहीं।"

"तेरी कुड़माई हो गई ?—धत्—कल हो गई—देखते नहीं रेशमी बूटों-वाला सालू—अमृतसर में—"

घावों की टकराहट से मूर्च्छा खुली। करवट बदली। पसली का घाव बह निकला।

"वज़ीरा, पानी पिला,"—उसने कहा था।

स्वप्न चल रहा है। सूबेदारनी कह रही है—"मैंने तेरे को आते ही पहचान लिया। एक काम कहती हूँ। मेरे तो भाग फूट गए। सरकार ने बहादुरी का ख़िताब दिया है, लायलपुर में ज़मीन दी है, आज नमकहलाली का मौक़ा आया है, पर सरकार ने हम तीमियों (=स्त्रियों) की एक घँघरिया पलटन क्यों न बना दी, जो मैं भी सूबेदारजी के साथ चली जाती ? एक बेटा है। फौज में भर्ती हुए उसे एक ही वर्ष हुआ। उसके पीछे चार और हुए, पर एक भी नहीं जिया।" सूबेदारनी रोने लगी—"अब दोनों जाते हैं। मेरे भाग ! तुम्हें याद है, एक दिन टाँगेवाले का घोड़ा दहीवाले की दुकान के पास बिगड़ गया था। तुमने उस दिन मेरे प्राण बचाए थे। आप घोड़े की लातों में चले गए थे और मुझे उठाकर दुकान के तख़्ते पर खड़ा कर दिया था। ऐसे ही इन दोनों को बचाना। यह मेरी भिक्षा है। तुम्हारे आगे मैं आँचल पसारती हूँ।"

रोती-रोती सूबेदारनी ओबरी में चली गई। लहना भी आँसू पोंछता हुआ बाहर आया।

"वज़ीरासिंह, पानी पिला,"—उसने कहा था।

× × ×

लहना का सिर अपनी गोदी पर रखे वज़ीरासिंह बैठा है। जब माँगता है, तब पानी पिला देता है। आध घंटे तक लहना चुप रहा, फिर बोला—

"कौन ? कीरतिसिंह ?"

वज़ीरा ने कुछ समझकर कहा—"हाँ।"

"भइया, मुझे और ऊँचा कर ले। अपने पट्ट पर मेरा सिर रख ले।"

वज़ीरा ने वैसा ही किया।

"हाँ, अब ठीक है। पानी पिला दे। बस। अब के हाड़ (=आषाढ़) में यह आम खूब फलेगा। चाचा-भतीजे दोनों यहीं बैठकर आम खाना। जितना बड़ा तेरा भतीजा है उतना ही यह आम है। जिस महीने उसका जन्म हुआ था उसी महीने में मैंने इसे लगाया था।"

वज़ीरासिंह के आँसू टप्-टप् टपक रहे थे।

× × ×

कुछ दिन पीछे लोगों ने अख़बारों में पढ़ा—

फ्रांस और बेलजियम—६८ वीं सूची—मैदान में घावों से मरा—नं० ७७, सिख राइफ़ल्स, जमादार लहनासिंह।